बिहारमें जैनधर्म

डा० उपेन्द्र ठाकुर, बोधगया

यह ठीक ही कहा गया है कि जैनधर्म कभी किसी संकुचित दृष्टिका शिकार नहीं बना और उसका दृष्टिकोणशब्दके सही अर्थमें उदार और उदात्त रहा है। साथ ही, जैनियोंने देशके किसी एक भाग तक ही अपने कार्यकलापोंको सीमित नहीं रखा, प्रायः देशके प्रत्येक कोनेमें वे फैले हुए हैं। उनके अंतिम तीर्थंकर यदि उत्तर बिहार (विदेह अथवा मिथिला) में उत्पन्न हुए थे, तो उन्हें मगध (दक्षिण बिहार) में निर्वाण प्राप्ति हुआ, जो मुख्यतया उनका कार्य-क्षेत्र भी रहा था। उनके पहले पार्श्वनाथ यद्यपि वाराणसीमें उत्पन्न हुए थे फिर भी तपस्या करने वह मगधके सम्मेद शिखर (पार्श्वनाथ पर्वत) पर ही आये। उनसे भी पूर्वके तीर्थंकर नेमिनाथने भारतके पश्चिमी क्षेत्र काठियावाड़को अपनी तपस्या, उपदेश एवं निर्वाणका क्षेत्र बनाया था। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथने अयोध्यामें जन्म लेकर भी कैलाश पर्वत पर तपस्या की। तात्पर्य यह है कि उत्तरमें हिमालयसे लेकर पूर्वमें मगध और पश्चिममें काठियावाड़ तक इन जैन मुनियों एवं आचार्योंका कार्यक्षेत्र था जो इनकी निरन्तर साधना एवं निर्वाणसे दिगदिगन्तमें मुखर हो चुका था

[१]

बौद्धोंकी भाँति जैनधर्मके इतिहासमें भी बिहारकी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा बौद्ध धर्म तथा जैनधर्मके विकास एवं प्रचारमें बिहारका अधिक योगदान रहा है। भगवान् महावीरका जन्म वैशालीमें हुआ था जहाँ उन्होंने बाल्यावस्था तथा जीवनका प्रारम्भिक समय व्यतीत किया था। इस तरह वैशालीकी महत्ता जैनियोंके लिए वही है जो सारनाथ तथा अन्य बौद्ध स्थानोंको चीन, वर्मा तथा अन्य बौद्ध देशोंके लिए है। किन्तु, सबसे दुःखद बात तो यह है कि ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें वैशाली एवं उससे सभी कार्य-कलापोंकी घोर उपेक्षा की गयी है। ७ वीं सदीमें जब ह्वेनसांगने इस भूभागकी यात्रा की तो एक ओर हिंदू देवी-देवताओंके मन्दिर मिले, वहीं दूसरी ओर अधिकांश बौद्ध-विहारके मात्र भग्नावशेष। कुछ जैन मंदिर अवश्य थे जहाँ काफी संख्यामें निर्ग्रन्थ मुनि वास कर रहे थे। किन्तु, पटना जिला-स्थित पावापुरी (जहाँ महावीरको निर्वाण प्राप्त हुआ था) तथा चम्पापुरी (भागलपुर) की भाँति जैनियोंकी दृष्टिमें भी इस स्थानका वह महत्व अभी हाल तक नहीं था और न ही इस भूभागमें किसीने जैन अवशेषोंकी खोजका प्रयास किया। कुछ वर्ष पूर्व इस ओर विद्वानोंका ध्यान आकर्षित हुआ है जिसके फलस्वरूप एक-बार नये सिरेसे इसके सम्बन्धमें गवेषणा-कार्य प्रारम्भ हुए हैं।[1]

भगवान् महावीरके पिता वैशालीके नागरिक थे और माता विदेह अथवा मिथिलाकी कन्या। महावीरके ओजस्वी व्यक्तित्व एवं उपदेशोंके फलस्वरूप वैशाली उस समय जैनमतका सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गयी थी जहाँ देशके कोने-कोनेसे श्रमणमुनि आकर साधना करते थे। बारहवें तीर्थंकर वसुपूज्यको चम्पापुर (भागलपुर) में निर्वाण प्राप्त हुआ था और इक्सीसवें तीर्थंकर नेमिनाथका जन्म मिथिलामें ही हुआ था। स्वयं महावीरने भी वैशालीमें बारह तथा मिथिलामें ६ वर्षाऋतुएँ बितायी थीं।

१. विस्तृत विवरणके लिये देखिये, लेखककी पुस्तक "स्टडीज इन जैनिज्म एण्ड बुद्धिज्म इन मिथिला", अध्याय ३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन ग्रन्थों एवं तत्कालीन अन्य साक्ष्योंके आधार पर यह स्पष्ट है कि अंग (भागलपुर), मगध, बज्जि, लिच्छवि क्षेत्र (जिसमें विदेह भी सम्मिलित था) तथा काशी-कोशल साम्राज्य महावीर के कार्य-क्षेत्र थे जहाँ निर्ग्रन्थ अनुयायी भगवान्के उपदेशोंके प्रचार-प्रसारमें लगे थे। बौद्ध-ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि राजगीर, नालन्दा, वैशाली, पावापुरी तथा सावत्थी (श्रावस्ती) में ही महावीर तथा उनके अनुयायियोंकी धार्मिक गतिविधि अधिकांशतः सीमित थी और लिच्छवियों तथा विदेह-निवासियोंका एक बहुत बड़ा समूह उनका कट्टर अनुयायी बन चुका था। उनके कुछ समर्थकोंका तो तत्कालीन समाजमें बहुत महत्वपूर्ण स्थान था जैसे लिच्छवि सेनाध्यक्ष सिह अथवा सिंह[1], सच्चक[2] आदिका। तात्पर्य यह कि अपने युगमें वैशाली तथा विदेहमें समाजके सभी वर्गों—छोटे अथवा बड़े—पर उनका अद्भुत प्रभाव था जिसके फलस्वरूप जैन 'आर्य देशों'में मिथिला अथवा विदेहकी भी गणना होती थी। इस प्रकार भारतीय संस्कृतिके उषःकालमें ही वैशाली और विदेहको धर्म तथा दर्शनके क्षेत्रमें पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो चुकी थी और वहाँके धर्मोपदेशक भगवान् महावीर द्वारा निर्देशित धर्म-मार्ग पर चलनेके फलस्वरूप बौद्धधर्मके अभ्युदयके पूर्व ही समस्त देशमें अपना एक विशेष स्थान बना चुके थे।

[२]

अधिकांश विद्वानोंका ऐसा मत है कि बौद्धधर्मकी भाँति जैन मत भी ब्राह्मण धर्मके विरुद्ध प्रतिक्रिया एवं असंतोषका परिणाम था, किन्तु तत्कालीन साक्ष्योंका अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सामान्यतः ब्राह्मण दार्शनिक जैनियों अथवा जैनमतसे उतनी ईर्ष्या नहीं रखते थे जितनी बौद्धोंसे। यह सही है कि जैनधर्म तथा दर्शनका जो वर्तमान स्वरूप है उसके स्रष्टा एवं प्रवर्तक भगवान् महावीर थे, किन्तु यह मत उनके अभ्युदयके पूर्व भी मौजूद था और उनसे पहले २३ तीर्थंकर हो चुके थे। ब्राह्मण दार्शनिक इन तीर्थंकरोंके उपदेशोंसे परिचित थे और बहुधा आपसमें उन लोगोंमें विचारोंका आदान-प्रदान भी होता रहता था। इसलिये, शब्दके वास्तविक अर्थमें यह नहीं कहा जा सकता कि जैनमत ब्राह्मण धर्मके विरुद्ध एक विद्रोहके रूपमें पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। जैनमतका बीजारोपण तो बहुत पहले ही हो चुका था, किन्तु महावीरके अभ्युदयके बाद इसका पर्याप्त विकास हुआ। यह सही है कि ब्राह्मण दार्शनिकोंने जैन सिद्धान्तोंकी आलोचना की किन्तु उस उग्रता एवं कटुतासे नहीं जो उनके द्वारा की गयी बौद्धमतकी आलोचनामें लक्षित होती है। साथ ही महावीरने भी वेदोंकी सत्ताकी आलोचना अवश्य की थी किन्तु उस रूपमें नहीं जिस तरह बुद्धने की थी। तात्पर्य यह है कि बौद्धोंने धर्मके नाम पर जो आक्रामक नीति अपनायी थी, जैनी उससे अलग रहे। वास्तविकता तो यह है कि 'त्रिवर्ण'—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—को मान्यता प्रदान कर महावीरने अपरोक्ष रूपसे समाजमें परम्परागत जाति-व्यवस्थाको स्वीकार कर ब्राह्मण दार्शनिकोंकी वाग्धाराको कुंठित कर दिया था।

महावीर एवं बुद्धके समय समस्त उत्तर भारतमें एक ही तरहकी आर्थिक-धार्मिक स्थिति थी। जाति-व्यवस्था एवं तज्जन्य कुरीतियोंसे तत्कालीन समाजग्रस्त था। पुरोहितवाद समाजके ढाँचेको खोखला किये जा रहा था। अपनेको 'भूदेव' कहने वाले ब्राह्मण पुरोहित धर्मके नाम पर समाजके निर्धन वर्गको तबाह किये हुये थे। धर्मके क्षेत्रमें कुरीतियाँ इस हद तक बढ़ गयी थीं कि जनक तथा याज्ञवल्क्य—जैसे ऋषियोंको भी इसके विरुद्ध आवाज उठानी पड़ी जो उपनिषद् ग्रन्थोंसे स्पष्ट है। समाजके अधिकांश वर्ग इससे त्राण पानेके लिये किसी नये मार्गकी प्रतीक्षा कर रहे थे और ठीक ऐसे ही समय मानवताकी दो

१. विनयपिटक।
२. मज्झिमनिकाय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमर विभूतियों—महावीर और बुद्ध—का भारतीय रंगमंच पर आविर्भाव हुआ, और यह स्वाभाविक ही था कि पुरोहितवादसे त्रस्त जनसाधारण इनकी ओर आकर्षित हों और इनके बताये मार्गों पर उत्साह-पूर्वक चलें। इस मौकेसे लाभ उठाकर महावीरने कुछ संशोधनोंके साथ पार्श्वके धर्मको लोगोंके समक्ष रखा जो अल्पकालमें ही अपने 'समानता एवं अहिंसाके सिद्धान्तों' के कारण काफी लोकप्रिय हो चला। उनके उपदेश इतने प्रभावोत्पादक थे कि ब्राह्मणोंका एक वर्ग भी प्रव्रजित होकर उनका अनुयायी बन गया। इन ब्राह्मणोंमें अधिकांशतः बुद्धिजीवी थे जिनके अथक प्रयाससे यह और भी आगे बढ़ा।

महावीरकी दृष्टिमें ब्राह्मण हो अथवा शूद्र, श्रेष्ठ हो अथवा नीच—सभी बराबर थे। वह ब्राह्मणको 'जन्मना' नहीं, 'कर्मणा' मान्यता देते थे और उनके अनुसार समाजके सबसे निम्न वर्ग में जन्म लेकर भी एक चांडाल अपनी योग्यतासे समाजमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर सकता था। ब्राह्मणधर्मकी भाँति ही जैन मत आत्माके स्थानान्तरण एवं पुनर्जन्मके अनन्त चक्रोंसे मुक्ति पानेके सिद्धान्तोंमें विश्वास करता है।[1] किन्तु, इसकी प्राप्तिके लिए ब्राह्मणों द्वारा बताये गये मार्गोंको वह नहीं मानता। इसका लक्ष्य निर्वाणप्राप्ति है, न कि सार्वभौम आत्मासे तादात्म्य स्थापित करना। दोनोंमें अन्तर बहुत कम है जो जातिगत विभेदके कारण है। महावीरने न तो उनका विरोध किया और न ही उनकी सभी वस्तुओंको माना। उनके अनुसार यद्यपि पूर्व जन्मके कृत्योंसे ही मनुष्यका पुनर्जन्म-ऊँची अथवा नीची जाति-निर्धारित होती है, फिर भी इस जन्ममें पवित्र एवं धार्मिक आचरण द्वारा कोई भी व्यक्ति निर्वाण अथवा मोक्षके उच्च शिखर तक पहुँच सकता है। तात्पर्य यह कि तीर्थंकर महावीरके लिए जातिका कोई महत्त्व नहीं था, वह तो चांडाल में भी देवात्माको खोजते थे।

[३]

संसारमें सभी दुःख और विपत्तिसे घिरे हैं, उनसे मुक्तिकी कतई सम्भावना नहीं। इसीलिए उन्होंने समस्त प्राणियोंके उत्थानका मार्ग बताया। जाति-व्यवस्था तो मात्र परिस्थितिगत है और कोई भी धार्मिक पुरुष उचित मार्ग पर चलकर इन बन्धनोंको आसानीसे तोड़ सकता है। मुक्ति किसी वर्ग-विशेष अथवा जाति-विशेषकी धरोहर नहीं है। महावीरने मनुष्य और मनुष्य तथा नर और नारीके बीच जरा भी अन्तर नहीं माना।[2] जैनियोंका ऐसा विश्वास रहा है कि 'जिन' क्षत्रिय वर्ग अथवा किसी उदात्त परिवार में ही पैदा होते हैं। दूसरे शब्दोंमें, महावीरने युग-युगान्तरसे चली आ रही जाति-व्यवस्था पर परोक्ष रूपसे प्रहार कर भी अपरोक्ष रूपसे उसे मान्यता दी जिसके फलस्वरूप ब्राह्मण-दार्शनिकोंसे उनकी ऐसी भिड़न्त नहीं हुई जो बौद्ध दार्शनिकोंसे और, यही कारण है कि जैनमत आज भी अपने पूर्व रूपमें जीवित है जबकि हिन्दू-दर्शनने १२वीं सदी तक आते-आते बौद्धमतको पूर्णतया आत्मसात कर लिया।

यह उल्लेखनीय है कि जैनधर्मकी रक्षा बहुत कुछ जैनियोंके अनुशासित जीवन एवं सिद्धान्तोंका तत्परतापूर्वक पालनके कारण हुई। ईसासे तीन सौ वर्ष पूर्व भद्रबाहुके समय जैनसंघमें जो विभाजन हुआ, उसके बादसे लेकर अब तक उनके प्रायः सभी मूल सिद्धान्त अपरिवर्तित रहे और आज भी जैन सम्पदायके अनुयायियोंका धार्मिक जीवन दो हजार वर्ष पूर्व जैसा ही है। किसी भी प्रकारका परिवर्तन स्वीकार न करना जैनियोंकी एक खास विशेषता रही है। बहुतसे तूफान आये और गुजर गये लेकिन यह विशाल वट-वृक्ष अपने स्थान पर अडिग रहा। महावीर एक अद्वितीय व्यक्तित्व थे जो मनुष्यकी आत्मपूर्णताके लक्ष्य पर

१. सेकेड बुक्स आफ दी ट्रस्ट, भाग ३२, पृ० २१३।
२. बी० सी० लॉ०, महावीर, पृ० ४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष जोर देते थे। उन्होंने कभी भी वैसी बातोंका उपदेश नहीं दिया जिन पर उन्होंने स्वयं व्यवहार नहीं किया हो। अपनी अन्तरात्माकी ज्योतिसे दूसरोंके हृदयमें ज्योति जगाना ही उनका लक्ष्य था। अभूतपूर्व सहिष्णुता, सर्वस्व त्याग, क्षमाशीलता, मानवता, संवेदनशीलता, पीड़ा और त्याग, प्रेम और दयाके मानो वह जीवित प्रतीक थे। 'कैवल्य' की प्राप्तिके पश्चात् वह एक चिरंतन सार्वभौम व्यक्तित्वके रूपमें मानवताके समक्ष आये—वह व्यक्तित्व जो विश्व मानवता पर सदाके लिए अपनी अमर छाप छोड़ जाता है।

उच्चतम जीवनका मूलभूत सिद्धान्त अहिंसा है जिसका व्यावहारिक रूप उन्होंने अपने शिष्यों एवं अनुयायियोंके समक्ष रखा। मनुष्य हो अथवा जीव-जन्तु सबके प्रति प्रेम और अहिंसाकी भावना आवश्यक है। हत्या चाहे बड़ी हो अथवा छोटी—मनुष्यको नीचे गिराती है और उससे जीवनकी सार्थकता नष्ट हो जाती है। नैतिकता, निर्वाण अथवा मुक्ति, क्रियावाद (कर्मका सिद्धान्त) तथा स्याद्वाद जैनमतके कुछ ऐसे मूलभूत सिद्धान्त हैं जो सार्वभौम एवं सार्वजनीन हैं और इनके अभावमें मानवता कभी नहीं पनप सकती है। यह ठीक है कि बौद्ध मतकी भाँति जैनमत देशके बाहर लोकप्रिय नहीं हो सका, किन्तु इसके साहित्य, दर्शन, स्थापत्य कला, चित्र-कला तथा मूर्तिकला भारतकी ऐसी धरोहर हैं जो सदा-सर्वदा विश्वमानवका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती रहेंगी।

भारतीय दर्शनको जैन दार्शनिकों एवं नैयायियोंकी देन किसीसे कम नहीं। यह ठीक है कि किसी अशोक अथवा हर्ष जैसे सम्राट्का संरक्षण इस धर्मको प्राप्त नहीं हो सका, फिर भी काशी, मगध, वैशाली, अंग, अवन्ति, मल्ल, शुङ्ग, शक-कुषाण तथा कुछ गुप्त शासकोंका प्रश्रय इसे अवश्य मिला जो इनकी प्रगतिमें काफी सहायक हुआ। राजकीय संरक्षणके अभावकी पूर्त्ति उस युगके कुछ मूर्धन्य जैन दार्शनिकों द्वारा हुई, जिसमें सिद्धसेन दिवाकर (५३३ ई० : जैन न्यायके प्रवर्त्तक), समन्तभद्र (६०० ई०), अलंकदेव (७५० ई०), पाटलिपुत्रके विद्यानन्द (८०० ई०), प्रभाचन्द्र (८२५ ई०), मल्लवादिन (८२७ ई०), अभयदेवसूरि (१००० ई०), देवसूरि, चन्द्रप्रभ सूरि (११०२ ई०), हेमचन्द्र सूरि (१०८८–११७२ ई०), आनन्द सूरि तथा अमरचन्द्र सूरि (११९३–११५० ई०), हरिभद्र सूरि (११६८ ई०), मल्लिसेन सूरि (१२९२ ई०) आदिके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। इनमेंसे अधिकांश मगध अथवा बिहारके थे जिन्होंने अपनी अमर कृतियों से जैन साहित्य एवं दर्शनकी सभी शाखाओंको पुष्पित एवं पल्लवित किया और बौद्ध नैयायिक जैसे दिङ्नाग एवं धर्मकीर्ति तथा अक्षपाद, उद्योतकर, वाचस्पति और उदयन जैसे दुर्द्धर्ष मैथिल दार्शनिकों और मनीषियोंके तर्कोंका खण्डन कर जैनमतको प्रतिपादित किया। उस समय बौद्ध, जैन तथा मैथिल दार्शनिकोंके बीच अक्सर शास्त्रार्थ एवं एक दूसरेके मतोंका खण्डन-मण्डन हुआ करता था, किन्तु यह विवाद बौद्ध एवं हिन्दू नैयायिकोंके बीच जितना उग्र हुआ करता था, उतना हिन्दू और जैन मनीषियोंके बीच नहीं। वास्तविकता तो यह है कि श्रमणमुनि (जैन) तथा वैदिक ऋषि भारतीय इतिहासके प्रारम्भसे ही साथ-साथ चिन्तन-मनन करते आ रहे थे और जन साधारणमें उनका एक-सा सम्मान था, यद्यपि उनके आदर्शों एवं मार्गोंमें काफी अन्तर था।[1] कभी-कभी अपने-अपने आदर्शोंकी रक्षाके लिए उनके बीच भी कटु विवाद हुआ करते थे, फिर भी ये ऋषि और मुनि सामान्य जनोंकी दृष्टिमें इतने सम्मानित थे कि धीरे-धीरे इनके बीच कोई भी साम्प्रदायिक अन्तर नहीं रह पाया और कालक्रमसे इन श्रमणोंने यह भी दावा किया कि वे वास्तवमें सच्चे ब्राह्मण थे। जो भी हो, यह तो मानना पड़ेगा कि इन दार्शनिकोंका आपसी विवाद भारतीय न्याय दर्शनके लिए वरदान बन गया।[2]

१. जर्नल ऑफ दी बिहार रिसर्च सोसाइटी, १९५८, पृ० २, तथा बुद्ध जयन्ती विशेषांक, खंड २।
२. वही, १९५८, पृ० २-३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यिक साक्ष्यके अतिरिक्त बिहारमें जैनमतके सम्बन्धमें हमें पुरातात्विक साक्ष्यों—जैसे जैन कला तथा स्थापत्य जिसके अवशेष समस्त उत्तर भारतमें आज भी पाये जाते हैं—से भी पर्याप्त सहायता मिलती है। वास्तवमें भारतीय कलाको जैनियोंकी देन किसीसे कम नहीं है। स्थापत्यकलाके क्षेत्रमें जैन कलाकारोंने जो पूर्णता प्राप्तकी, उसका दृष्टान्त अन्यत्र कहीं भी मिलना कठिन है।[1] यद्यपि बिहारमें जैन कलाके बहुतसे अवशेष प्राप्त हैं, फिर भी यह बड़े खेदकी बात है कि भगवान् महावीरकी जन्मभूमि वैशालीमें कोई ऐसा अवशेष नहीं मिलता जो जैन संघसे सम्बन्धित हो। हाँ, जैन साहित्यमें वैशाली तथा उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्रोंमें तत्कालीन जैन मन्दिरोंके कई उल्लेख मिलते हैं। 'उवासगदसाओ'[2] में ऐसा कहा गया है कि ज्ञात्रिकोंने अपनी निवास-भूमि कोल्लागके निकट एक जैन मन्दिरका निर्माण करवाया था जो 'दुइपलास चिय' (चैत्य) के नामसे विख्यात था। बौद्ध परम्पराकी भाँति ही जैनियोंमें भी अपने तीर्थंकरोंकी समाधिके ऊपर स्तूप-निर्माणकी परम्परा थी और वैशालीमें जैन मुनि सुव्रतकी समाधि पर उस प्रकारके एक स्तूपका वर्णन मिलता है। इसी प्रकारके एक दूसरे स्तूपका उल्लेख मथुरामें मिलता है जो जैन मुनि सुपार्श्वनाथकी समाधि पर निर्मित हुआ था। वैशालीके स्तूपकी चर्चा 'आवश्यकचूर्णि'[3] में की गयी है जिसमें इस प्रकारके कई प्रसंग आये हैं। अभी हालमें कौशाम्बी तथा वैशालीमें जो उत्खनन हुए हैं उनमें विभिन्न रंगों एवं 'चित्रित उत्तरी कृष्ण मृद्भाण्ड' (एन० बी० पी० वेयर) के कई नमूने मिले हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि इसी शैलीका जन्म मगधमें ही हुआ था।

'औपपातिक-सूत्र' में चम्पा नगरके उत्तर-पूर्व स्थित आम्रशालवनमें जिस पूर्णभद्र चैत्यका उल्लेख मिलता है वह अत्यन्त प्राचीन तथा अपने ढंगका निराला था जिसके वर्णनसे जैन कलाकारोंकी स्थापत्य कला सम्बन्धी दक्षता पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। अभी हालमें वैशालीमें भगवान् महावीरकी एक पाल-कालीन मूर्ति मिली है जो वैशाली गढ़के पश्चिम-स्थित एक मन्दिरमें प्रतिष्ठापित है जहाँ भारतके कोने-कोनेसे जैनी श्रद्धावनत हो अपने 'जैनेन्द्र' की पूजा करने बड़ी संख्यामें प्रत्येक वर्ष, विशेषकर भगवान् महा-वीरकी जयन्तीके अवसर पर, वहाँ जाते हैं। यह स्थान एक पवित्र जैन तीर्थ स्थल हो चला है। बेगू-सरायका जयमंगलगढ़ भी जैनियोंका एक प्राचीन स्थान माना जाता है, यद्यपि इसकी पुष्टिमें अभी तक कोई ठोस पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका है। कहा जाता है कि मौर्य शासक सम्प्रतिने बहुतसे जैन मंदिरोंका निर्माण करवाया था, किन्तु खेद है कि अभी तक उसके कोई भी अवशेष प्राप्त नहीं हो सके हैं।

अंगदेश (आधुनिक भागलपुर) का मंदार पर्वत जैनियोंका एक पवित्र स्थान माना जाता है, कारण यहीं पर बारहवें तीर्थंकर वसुपूज्यनाथने निर्वाण प्राप्त किया था। इस पर्वतका शिखर अत्यन्य पवित्र माना जाता है और लोगों का ऐसा विश्वास है कि यह भवन श्रावकोंके लिये निर्मित किया गया था जिसके एक प्रकोष्ठमें आज भी एक 'चरण' रखा हुआ है। यहाँ पर कुछ और जैन अवशेष मिले हैं। भागलपुरके निकट कर्णगढ़में भी जैनधर्मसे सम्बन्धित अवशेष मिले हैं और यहाँके प्राचीन दुर्गके उत्तर एक जैन विहारका भी उल्लेख मिलता है।

दक्षिण बिहारकी अपेक्षा उत्तर बिहार (मिथिला) में जैन पुरातात्विक अवशेष, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, बहुत कम मिलते हैं। किन्तु, यदि विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों पर उत्खनन किये जायें तो

१. गुएरिनोत, ल रिलिजन जैन, पृ० २७९।
२. होएर्नले, भाग १, पृ० २।
३. जिनदास-कृत, 'आवश्यकचूर्णि' (६७६ ई०), पृ० २२३-२७, ५६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस भूभागमें भी अनेक जैन स्थल मिलेंगे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। मध्य भारत, उत्तर प्रदेश तथा बिहारमें अनेक जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं और हजारों कांस्य मूर्तियाँ पश्चिमी भारतकी स्थानीय कला-शैलीमें मिली हैं जिनके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि राजस्थानकी भाँति ही बिहार तथा बंगालमें भी जैनियों-की अपनी उत्कृष्ट कला-शैली थी।[1]

उत्तर बिहारके विपरीत दक्षिण बिहारमें जैन कलाके कुछ उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। प्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ पर्सी ब्राउनने यह ठीक ही कहा है कि जैन कलाकारोंने कुछ विशेष पर्वतों ('Mountains of Immortality') का चयन कर उनके शिखरों पर मन्दिरों तथा स्तूपोंका निर्माण कर उन्हें कला जगत्में अमर कर दिया। इन पर्वतीय प्रदेशोंको 'मंदिर नगर' कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इनमें से प्रत्येक मंदिर अथवा 'तीर्थ' सदियोंके श्रद्धापूर्ण अध्यवसायके जीवित प्रतीक हैं जो किसी भी दृष्टिसे विलक्षण और बेजोड़ कहे जा सकते हैं।[2]चाहे पार्श्वनाथ पर्वतके मंदिर हों अथवा राजगीरके, ये अपने आप में एक पवित्र नगर हैं जो भवनोंके दृश्यको प्रथम दृष्टिमें ही श्रद्धासे परिपूरित कर देते हैं। शाहाबाद जिलेमें तो 'धर्मचक्र' भी पाये गये हैं। ठीक यही बात हजारीबागके कुलुहा पर्वतके साथ भी है। यहाँ जैन तीर्थंकर शीतलनाथका जन्म हुआ था और यहाँ दिगम्बर सम्प्रदायकी काफी मूर्तियाँ मिली हैं। यहाँ पर पत्थरोंको तराश कर जो दस दिगम्बरी मूर्तियाँ गढ़ी गयी हैं उन्हें लोग पाँचो पांडव तथा उनके दासोंकी मूर्तियाँ भी मानते हैं, जो तर्कसंगत नहीं जँचता। इसी प्रकार छोटा नागपुरका मानभूमि जिला भी किसी समय जैनधर्मका एक महान केन्द्र था। जैन पुरातत्वके जितने अवशेष यहाँ प्राप्त हुए हैं, संभवतः भारतके किसी भी स्थानमें अभी तक इतने नहीं मिले हैं। प्राचीन कालमें बंगाल अथवा बिहारसे उड़ीसा जानेके लिये मानभूम होकर ही लोगोंको जाना पड़ता था।

उड़ीसा-स्थित खंडगिरि पर्वतकी गुफाओंमें जैनियोंके विलक्षण पुरातात्विक अवशेष मिले हैं। उड़ीसा-का प्रसिद्ध सम्राट् खारवेल गया-स्थित बराबर पहाड़ियों तक आया था और मानभूमके माध्यमसे ही बिहार और उड़ीसाके बीच उस समय सम्पर्क स्थापित था। मानभूमसे इतनी प्रचुर मात्रामें जैन अवशेषोंकी प्राप्तिके पीछे यह भी एक कारण हो सकता है। ह्वेनसांगके अनुसार यहाँके बाराभुम परगनाके 'बड़ा बाजार' नामक स्थान तक भगवान् महावीर भ्रमण करने आये थे। बलरामपुर, बोराम, चंदनकिआरी, पकबीरा, बुधपुर, दारिका, चर्रा, दुल्मी, देवली, भवानीपुर, अनई, कटरासगढ़, चेचगाँवगढ़ आदि छोटा-पुरके अनेक स्थानोंमें जैन अवशेष भरे पड़े हैं जिनका जैनधर्मके इतिहासमें अपना एक खास महत्व है।[2] ठीक इसी प्रकार गया, शाहाबाद, भागलपुर, पटना, मुजफ्फरपुर आदि स्थानोंमें भी जैन अवशेष पाये जाते हैं जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है और जिनका सम्यक् अध्ययन, बिहारमें जैनधर्मके वास्तविक स्वरूप एवं उसके प्रचार-प्रसारको जाननेके लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस दिशामें अभी हालमें डा० राजाराम जैनने अपने लघुग्रन्थ 'श्रमण साहित्यमें वर्णित बिहारकी कुछ जैन तीर्थ भूमियां' द्वारा स्तुत्य प्रयास किया है।[3] किन्तु यह तो विशाल सागरमें मात्र एक बिन्दुकी भाँति है।[4]

---

१. पर्सी ब्राउन, 'इंडियन आर्किटेक्चर' (दी टेम्पुल सीटीज आफ दी जैन्स)।

२. विशेष विवरणके लिये देखिये, पी०सी० रायचौधरी, 'जैनिज्म इन बिहार'।

३' गया जिला भगवान् महावीर २५०० वाँ निर्वाण-महोत्सव संगोष्ठी संचालन समिति द्वारा १९७५ ई० में प्रकाशित।

२. इस सम्बन्धमें विशेष विवरणके लिये देखिये, हीरालाल जैन-कृत 'भारतीय संस्कृतिमें जैनधर्मका योगदान।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस धर्म की आधार भूमि उतनी ही प्राचीन है जितनी वैदिक परम्परा, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण ऋग्वेदमें उल्लिखित केशी जैसे वातारशा मुनियोंकी साधना है जिससे यह स्पष्ट है कि वे वैदिक ऋषियोंसे तो पृथक् थे, किन्तु श्रमण मुनियोंसे अभिन्न थे। इसके अतिरिक्त केशी तथा तीर्थंकर ऋषभदेवका एकत्व भी हिन्दू और जैन पुराणोंसे सिद्ध होता है।

वैशाली तथा विदेहसे प्रारंभ होकर मगध, कोशल, तक्षशिला और सौराष्ट्र तक यह श्रमण धर्म फैला और इसके अंतिम तीर्थंकर महावीरने छठी सदी ई० पू० में इसे सुव्यवस्थित रूप देकर देश-व्यापी बना दिया। साथ ही उसने उत्तर और दक्षिण भारतके विभिन्न राजवंशों तथा तत्कालीन समाजको प्रभावित किया और अपने आंतरिक गुणोंके कारण समस्त देशमें आज भी अपना अस्तित्व उसी प्रकार सुरक्षित रखे हुए है। साहित्यके अतिरिक्त इस धर्मने गुफाओं, स्तूपों, मंदिरों, मूर्त्तियों, चित्रों एवं ललितकलाके माध्यमसे न केवल लोकका नैतिक व आध्यात्मिक स्तर उठाने का प्रयास किया है, बल्कि देशके विभिन्न भागोंको इसने अपने सौन्दर्यसे सजाया है और, इस सांस्कृतिक योगदानमें बिहारका अपना विशेष स्थान रहा है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, २४ तीर्थंकरोंमेंसे २२ तीर्थंकरोंने इसी भूमिमें निर्वाण-प्राप्ति की जिनमेंसे २० तीर्थंकरोंने हजारीबाग जिलेके सम्मेदशिखर (पारसनाथ पर्वत), १२ वें तीर्थंकर वसुपूज्यने चम्पापुरी तथा अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीरने नालान्दा जिला-स्थित पावापुरीमें निर्वाण प्राप्त किया। इनके अतिरिक्त १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ तथा २१ वें तीर्थंकर नेमिनाथका जन्म विदेह अथवा मिथिलामें हुआ था जबकि २० वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ राजगिरिमें तथा २४ वें तीर्थंकर महावीर वैशालीके कुण्डग्राममें पैदा हुए थे।

सुप्रसिद्ध जैन ग्रंथ "तत्त्वार्थसूत्र" का प्रणयन स्वनामधन्य जैन सारस्वत उमास्वाति द्वारा पाटलिपुत्र में ही हुआ था। जैन धर्म तथा दर्शनके क्षेत्रमें इसका महत्व इसी बातसे आंका जा सकता है कि इस पर अब तक पाँच-छ टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। यह ठीक ही कहा गया है कि गीता, बाइबिल, कुरानशरीफ एवं गुरुग्रन्थ साहिबका जो महत्व हिन्दुओं, ईसाइयों, मुसलमानों और सिक्खोंके लिए है, वही "तत्त्वार्थसूत्र" का जैनियोंके लिए है। साथ ही पाटलिपुत्रमें ही जैन-परम्पराके अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहुका निवास-स्थान था। भारतके प्रथम ऐतिहासिक राजवंशके संस्थापक चन्द्रगुप्त जैनधर्ममें दीक्षित हुए कि नहीं, यह विवादास्पद है, किन्तु यह तो निर्विवाद है कि पाटलिपुत्रके शासक नन्दराज (लगभग चौथी सदी ई० पू०) आदि तीर्थंकर ऋषभदेवके महान् उपासक थे जो कलिंग-सम्राट् खारवेलके हाथीगुफा अभिलेखसे स्पष्ट है। बौद्ध मतके प्रति अधिक झुकाव होते हुए भी सम्राट् अशोकने बराबरकी पहाड़ियों पर आजीविकों एवं निर्ग्रन्थ (दिगम्बर जैन) साधुओंके लिए गुफाओंका निर्माण कर उन्हें हर प्रकारका संरक्षण प्रदान किया। वास्तवमें विहारके इतिहास में यह एक गौरवोज्ज्वल, स्वर्णिम अध्याय है।

जैन संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य के अनुशीलनसे पता चलता है कि किस प्रकार उसमें विगत २५०० वर्षोंके बिहारके जन-जीवनका सर्वांगीण चित्र मिलता है। "स्थानांगसूत्र के अध्ययनसे एक बहुत ही मनोरंजक बात सामने आती है कि देशके अन्य भागोंके निवासियोंकी अपेक्षा "मगध देशके निवासी अधिक चतुर एवं बुद्धिमान हुआ करते थे। वे किसी भी विषयको संकेत मात्र से समझ लेते थे जबकि कोशलके निवासी इसे देखकर ही समझ पाते थे और पांचाल देशवासी उसे आधा सुनकर तथा दक्षिण देशवासी उसे पूरा-पूरा समझ पाते थे। (३।१५२)।" एक ओर जहाँ जैन साहित्यमें मगध-निवासियोंकी प्रशंसा की गयी है, वहीं दूसरी ओर ब्राह्मणोंने मगध देशको पाप-भूमि बताकर वहाँ यात्रा करना भी निषिद्ध बताया है! स्पष्ट है कि तद्युगीन धर्म सम्बन्धी सैद्धान्तिक मतभेद ही इसके पीछे काम कर रहा था। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org